23 मार्च शहीद दिवस पर विशेष

आज भगतसिंह का मतलब फासीवाद को शिकस्त देना है

सत्यवीर सिंह

व्यक्ति संवेदनशील हो, मेहनतक़श अवाम का दर्द उसे टीसता हो, अन्याय के विरुद्ध लड़ने में कोई समझौता न करता हो और पूर्वाग्रह मुक्त हो, तो उसका, मार्क्सवाद-लेनिनवाद के रास्ते पर पहुंचना, लाज़िमी है। शहीद-ए-आज़म भगतसिंह के छोटे से, लेकिन ज्योति-पुंज की तरह चमकते जीवन को पढ़ने के बाद, ये निष्कर्ष स्वत: सामने नज़र आता है। अपने जीवन की अंतिम बेला में, भगतसिंह ने, परिपक्व मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारक की तरह अपने विचार अभिव्यक्त किए। उन्हें बार-बार पढ़ने-पढ़ाने और उनके बताए रास्ते पर चलने का अहद लेने का, ये सबसे प्रमुख कारण है।

हमारे देश (पाकिस्तान, बांग्लादेश सहित) के सबसे सम्मानित क्रांतिकारी योद्धा, हीरो, प्रेरणास्रोत और शहीद- ए-आज़म का ख़िताब अर्जित करने वाले, भगतसिंह का जन्म, पाकिस्तान के लायलपुर (फ़ैसलाबाद) ज़िले की, ज़रनवाला तहसील के 'बंगा' (भगतपुरा) नामक गाँव में, 28 सितम्बर 1907 को हुआ। उनकी पुस्तैनी हवेली के मालिक, ज़म्मत अली नम्बरदार है। 'भगतसिंह मेमोरियल फाउंडेशन, लाहौर' के चेयरमैन, अधिवक्ता इम्तियाज़ रशीद क़ुरेशी के अनुसार, उन्होंने इस ऐतिहासिक हवेली को किसी भी भाव बेचने से मना कर दिया और स्वेच्छा से उसे 'भगतसिंह स्मारक' बनाने के लिए, सौंप दिया। किशन सिंह संधू और विद्यावती जी की 7 संतानों में वे, उम्र में दूसरे नंबर पर थे।

भगतसिंह का परिवार प्रगतिशील ख़यालात वाला था. उनके चाचा, अजीत सिंह के मूल्यांकन में, इतिहासकारों ने ना-इंसाफ़ी की है। वे देश के मज़लूमों, मेहनतक़शों के लिए जीवनभर लड़े. प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1857 की स्वर्ण जयंती मनाते हुए, 1907 में, किसानों के संघर्षों का औज़ार, 'पगड़ी संभाल जट्टा' बनाया। 'औपनिवेशिक क़ानून (Colonization Act)' तथा 'दोआब बाड़ी कानून'(नहर कानून) का विरोध किया, गिरफ्तार हुए। छूटने के बाद, वे समझ गए कि 1857 सुनते ही अंग्रेजों की आँखों में ख़ून उतर आता है, उन्हें अब, वे मार डालेंगे. 1909 में ईरान चले गए और पूरे 38 साल वहीं गुजारे। स्वतंत्रता दिवस, 15 अगस्त 1947 को उन्होंने अंतिम साँस ली।

भगतसिंह हर रोज़ परिपक्व मार्क्सवादी-लेनिनवादी होते गए

लाहौर जेल में, भगत सिंह ने विस्तृत अध्ययन किया। 'मेहनतक़श अवाम की मुक्ति के लिए, मार्क्सवाद- लेनिनवाद, कई उपलब्ध रास्तों में एक रास्ता नहीं बल्कि एकमेव रास्ता है', इस नतीज़े पर वे स्वयं पहुंचे।

'रूमानी कम्युनिस्ट' नहीं, बल्कि हर पल वे परिपक्व मार्क्सवादी-लेनिनवादी बनते गए। अपने अंतिम वर्ष में, उन्होंने जो कुछ लिखा, वह मार्क्सवाद-लेनिनवाद के बारे में, उनकी गहरी समझदारी रेखांकित करता है। उस वक़्त की भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के चरित्र का आज की कांग्रेस पार्टी से कोई मेल नहीं। लेकिन, उसके तत्कालीन वर्ग चरित्र के बारे में भी उन्हें, कोई मुगालता नहीं था। किसानों, मज़दूरों के क्रांतिकारी संगठन बनाने और 'जन- सेना' के निर्माण की आवश्यकता के बारे में उनका स्पष्ट मत, ये साबित करता है कि समाजवादी क्रांति की रणनीति का ब्लू प्रिंट उनके ज़हन में मौजूद था।

'नास्तिकता' भी उनकी किसी जोश अथवा युवाओं की रूमानियत वाली नहीं, बल्कि द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की ठोस बुनियाद पर खड़ी थी। फांसी का फंदा गले में डलने वाले क्षण भी, 'वाहे गुरु' को याद करने से दृढ़ता से मना करने से साबित होती है उनकी अडिग प्रतिबद्धता। 'जेल में उन्होंने मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन को ही नहीं बल्कि जॉर्ज बर्नार्ड शॉ, मैक्सिम गोर्की, अप्टन सिंक्लेयर, जैक

लंडन को भी पढ़ा। उनकी 'आज़ादी' का मतलब, अँगरेज़ औपनिवेशिक शासकों से आज़ादी मात्र, क़तई नहीं था। ये बात तो वे 1929 तक ही जान चुके थे, कि ऐसा करना, ख़ुद को धोखा देना है। शोषक की चमड़ी का रंग महत्वहीन है। आज़ादी का मतलब है, शोषण की चक्की, मतलब, समूचे शोषण-तंत्र को ही उखाड़ फेंकना। साम्राज्यवाद के साथ-साथ सामंतवाद और फिर पूंजीवाद को भी नष्ट करना। उसकी जगह, रूस की तरह मेहनतकशों के नेतृत्व में समाजवादी राज्य की प्रस्थापना करना।

क़ुदरत ने मौक़ा नहीं दिया और ये ख़ूबसूरत फूल खिलने-महकने से पहले ही मसल दिया गया, वरना देश के कम्युनिस्ट आन्दोलन का इतिहास कुछ और ही होता। लेनिन द्वारा प्रस्थापित क्रांति के दो चरण वाले सिद्धांत के अनुरूप, उनकी समझदारी बिलकुल स्पष्ट थी कि जनवाद का लक्ष्य, कुल संघर्ष का एक मुक़ाम मात्र है. वे अपनी ज़िन्दगी के छोटे से लेकिन चमकते हुए सफ़र के अंतिम दिनों में सर्वहारा का वर्चस्व (Dictatorship of Proletariat) की प्रस्थापना को अपने लक्ष्य में शामिल कर चुके थे। भगतसिंह की वैचारिक स्पष्टता ऐसी है कि उनके छद्म प्रशंसकों के सामने धर्म संकट पैदा कर देती है; 'कितना भगतसिंह अपनाना है और कितना दरी के नीचे छिपाना है'!! ये दुविधा, उनकी तस्वीर को फूलमालाएं पहनाने वालों, हवाई अड्डों का नाम भगतसिंह के नाम पर और हर सरकारी दफ़्तर में उनकी तस्वीरें लटकाकर, उनके विचारों को लोगों तक पहुँचने से रोकने वाले, हर पाखंडी के सामने, हमेशा ही रहने वाली है।

हकीक़त ये है कि मौजूदा शोषणमूलक व्यवस्था को समूल नष्ट कर, मेहनतकशों के अधिनायकत्व में, समाजवादी व्यवस्था प्रस्थापित करना, अगर मक़सद नहीं है, तो कोई कितना भी भाव-विभोर होने की नौटंकी करे, 'समूचे भगतसिंह' को स्वीकार नहीं कर सकता। कहीं ना कहीं, वह, उनके विचारों का निरादर, बेईमानी करेगा ही, चाहे वह उनका वंशज ही क्यों ना हो।

भगतसिंह के साथ, सबसे बड़ा अन्याय तो भाजपा-संघ, उन्हें पीली पगड़ी पहनाने वाले अकाली और आपीए कर रहे हैं। 'किन्तु-परन्तु' करने वालों को, भगतसिंह के सह-योद्धा शिव वर्मा द्वारा लिखा, 'क्रांतिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास' और बिपनचंद्र का शोध-निबंध, '1920 के दशक में उत्तर भारत में क्रांतिकारी आतंकवादियों की विचारधारा का विकास' पढ़ना चाहिए। शिव वर्मा लिखते हैं, "इस समय (1925 - 26) तक लाहौर के साथी, खासकर भगतसिंह और सुखदेव, रुसी अराजकतावादी बाकुनिन से प्रभावित थे। भगतसिंह को अराजकतावाद से समाजवाद की ओर लाने का श्रेय दो व्यक्तियों को है- कामरेड सोहनसिंह जोश... और लाला छबीलदास। जोश एक मशहूर कम्युनिस्ट नेता और 'किरती' मासिक पंजाबी पत्रिका के संपादक थे...लाला छबीलदास 'तिलक स्कूल ऑफ़ पॉलिटिक्स', जो नेशनल कॉलेज के नाम से भी प्रसिद्ध था, के प्रधानाचार्य थे..भगवतीचरण वोहरा का पहले से ही समाजवाद की तरफ़ रुझान था..इस आवश्यकता (किताबों की ज़रूरत) को पूरा किया लाला लाजपतराय की 'द्वारकादास लाइब्रेरी' ने, जहाँ मार्क्सवाद और सोवियत संघ पर ऐसी पुस्तकें भी उपलब्ध थीं, जिन्हें सरकार ने तब तक जब्त नहीं किया था।"

फांसी का फंदा जितना भगतसिंह की गर्दन की तरफ़ बढ़ता जा रहा था, भगतसिंह, उतनी ही ज्यादा मेहनत, मार्क्सवादी-लेनिनवादी साहित्य पढ़ने और अपने विचार साझा करने पर करते जा रहे थे। 8-9 सितम्बर 1928 को फिरोज़शाह कोटला दिल्ली में हुई मीटिंग में, HRA ·& HSRA में रूपांतरित करने का फैसला, गहन अध्ययन के बाद लिया गया निर्णय था। भगतसिंह का, एक परिपक्व मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारक की ओर बढ़ने का सफ़र इस तरह रहा; 'नौजवान भारत सभा का घोषणा पत्र, (1928), असेम्बली बम केस के दौरान, अदालत में दिया गया बयान (1929), कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन के समय बांटा गया, हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ का घोषणा पत्र (दिसंबर 1929) और बम का दर्शन (1930).

याद रहे, उस वक़्त मौजूद भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने, न अपनी कांग्रेस की थी और न अपना कोई दस्तावेज़ ही ला पाई थी। उसमें, मौलाना मदनी जैसे लोग ही अगली कतार में थे, जो 'इंक़लाब जिंदाबाद' का नारा तो इज़ाद कर पाए, लेकिन वृन्दावन में होने वाली कृष्ण-लीला में भी नियमित जाते रहे!! HSRA ने डंके की चोट पर, समाजवाद को अंतिम लक्ष्य के रूप में ऐलान कर दिया था। उनके इस ऐलान से, न सिर्फ़ अंग्रेज औपनिवेशिक लुटेरे दहशतज़दा थे, बल्कि उनके देसी वारिसों की भी नींद उड़ हुई थी। 2 मार्च, 1930 को महात्मा गाँधी, अँगरेज़ वायसराय को लिखे पत्र की शुरुआत इस तरह करते हैं, "हिंसावादी पार्टी अपनी जगह बनाती जा रही है, और उसने अपने अस्तित्व का अहसास कराना शुरू कर दिया है." पत्र के आखिर में वे, अंग्रेज़ों को अपनी अहमियत बताते हुए, आगाह करते हैं, "वे जिस तरह का अहिंसक आन्दोलन शुरू करना चाहते हैं, उससे ना सिर्फ़ ब्रिटिश हुकूमत की हिंसक शक्ति का, बल्कि उभरते हुए हिंसावादी दल का भी प्रतिरोध किया जा सकेगा।"

"क्रांति पिस्तौल और बमों से नहीं आती..क्रांति की तलवार की धार विचारों की शान पर तेज़ होती है', भगतसिंह का ये कथन बहुत गंभीर है. वे समझ चुके थे, कि क्रांति की क़ामयाबी के लिए सबसे ज़रूरी है, शोषित-पीड़ित समुदाय को जगाना और उन्हें लामबंद करना, जो वे नहीं कर पाए. वक़्त ने उन्हें इसका मौक़ा ही नहीं दिया और वे स्वाभाविक रूप से चलते हुए, दूसरे रास्ते पर बहुत दूर निकल चुके थे। शिव वर्मा, भगतसिंह के विचारों के बारे में आगे लिखते हैं, "व्यवस्थित ढंग से आगे बढ़ने के लिए आपको जिसकी सबसे अधिक आवश्यकता होती है, वह है एक पार्टी, जिसके पास, जिस प्रकार के कार्यकर्ताओं का ऊपर ज़िक्र किया जा चुका है, वैसे कार्यकर्ता (पेशेवर क्रांतिकारी) हों—ऐसे कार्यकर्ता, जिनके दिमाग साफ़ हों और समस्याओं की तीखी पकड़ हो और पहल करने और तुरंत फैसला लेने की क्षमता हो....किसानों और मज़दूरों को संगठित करने और उनकी सक्रिय सहानुभूति प्राप्त करने के लिए, यह बहुत ज़रूरी है. इस पार्टी को कम्युनिस्ट पार्टी का नाम दिया जा सकता है." मार्क्सवाद-लेनिनवाद की अपनी समझ और विचारों का, इससे अधिक खुलासा वे क्या करते? आज, 93 साल बाद, जब फासीवाद, समूचे मुल्क को अपनी जकड़ में ले चुका है, तब भी, हम वहीं खड़े हैं. कहाँ है ऐसी कम्युनिस्ट पार्टी, जो देश स्तर पर, क्रांतिकारी उभाड़ की रहनुमाई कर, उसे मंजिल तक पहुंचा सके।

'प्रताप' कानपुर के अलावा, भगतसिंह ने 'महारथी' दिल्ली, 'चाँद' इलाहबाद, 'अर्जुन' और 'मतवाला' दिल्ली अख़बारों में लिखा. 'किरती' में वे 'विद्रोही' नाम से लिखते थ। उन्हें पंजाबी, उर्दू, हिंदी और अंग्रेज़ी भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। जो भी उन्होंने लिखा है, वह सब सामने आ गया, ऐसा नहीं ह। इस दिशा में सरकारें तो, भला क्यों कुछ करतीं? सरकारों को तो भगतसिंह का नाम मज़बूरी में लेना पड़ता है। 'मैं नास्तिक क्यों हूँ', भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश और ब्रिटेन की सरकारों को डराने के लिए तो, ये लेख ही काफ़ी है। उपलब्ध साहित्य को पढ़ने से पता चलता है, कि उनकी लिखी, कम से कम चार किताबें ग़ायब हैं; 'आत्मकथा', 'समाजवाद का आदर्श', 'भारत में क्रांतिकारी आन्दोलन' और 'मृत्यु के द्वार पर'. ये पांडुलिपियाँ ग़ायब हैं। कहीं छुपी-दबी पड़ी हैं, या उन्हें जान-पूछकर नष्ट कर दिया गया है। भगतसिंह को, लिखने के लिए नोटबुक और पेन तथा पढ़ने के लिए किताबों की सुविधा, लाहौर जेल ने, 12 सितम्बर 1929 को दी। उस दिन से, 23 मार्च 1931 की शाम 7 बजे तक, जब उन्हें फांसी के लिए ले जाया गया, उन्होंने उपलब्ध हर एक पल का उपयोग पढ़ने-लिखने में किया। सभी जानते हैं, अंतिम घड़ी में, ये कहते हुए कि 'आज एक क्रांतिकारी दूसरे क्रांतिकारी से मिलने जा रहा है', जल्दी-जल्दी, क्लारा जेटकिन की लिखी पुस्तक, 'लेनिन की यादें (Reminiscences of Lenin)' पढ़ रहे थे, जिसका उक्त पन्ना मोड़कर, 'इससे आगे मेरे बाद वाले पढ़ेंगे', अपनी अंतिम यात्रा पर चले गए। इसलिए ये कहना, कि इतने कम समय में वे और 4 किताबें, कैसे लिख सकते थे, उनकी विशाल प्रतिभा के सामने अपना बौनापन प्रदर्शित करना है, या फिर, इन बहुमूल्य 4 किताबें खोजने के प्रयासों पर ठण्डा पानी फेरने जैसा है।

जो आज फ़ासीवाद से नहीं लड़ रहा, वह भगतसिंह का वारिस कहलाने का हक़दार नहीं

भगतसिंह का चेहरा, देश के बच्चे-बच्चे की ज़हनियत पर गुदा हुआ है. तस्वीर सामने आते ही रक्त गर्म हो जाता है, शिराओं में लहू तेज़ दौड़ने लगता है। बदकिस्मती से, इनमें से कितने ही, उनकी प्रतिमा पर फूल मालाएँ चढ़ाकर, 'फ़र्ज़ पूरा हुआ' मान लेते हैं। हर 23 मार्च को हम देखते ही हैं कि उनके विचारों से सख्त नफ़रत करने वालों को भी फूल मालाएं चढ़ानी पड़ती हैं. भाजपा-संघ वाले फासिस्ट तो, जो आज समूचे सत्ता तंत्र को, फासीवादी लपेटे में ले चुके हैं, भगतसिंह के विचारों पर परोक्ष हमला बोल ही रहे हैं, उनके वारिस होने का दावा करने वालों ने भी कोई तीर नहीं मारा ह। उनके विचारों, उनकी कुर्बानी के मर्म को कहाँ समझा है। समझा होता तो हरियाणा की फ़ासीवादी सरकार की क्या मजाल थी कि फ़रीदाबाद में एक मात्र 'भगतसिंह स्मारक' को तोड़कर उसे 'विस्थापन विभीषिका स्मारक' में तब्दील करने में क़ामयाब हो जाए।

अगर 'मैं नास्तिक क्यों' पढ़ा होता और जन-जन को पढ़वाया होता तो क्या मज़हब के नाम पर, जूनैद और नासिर को, यूँ जिंदा जलाया गया होता? इतना ही नहीं, बर्बरता के हिमायती, उन हत्यारों को बचाने के लिए, महापंचायतें आयोजित करने की हिमाक़त कर पाते? क्या ग़रीब अल्पसंख्यकों के घरों पर बुलडोज़र चलते देख, ख़ुश होने वाले लोग नज़र आते? कितनी भी कड़वी हो, कबूल करने में कितनी भी तक़लीफ क्यों ना हो, सच्चाई चट्टान की तरह हमें चिढ़ा रही है। ज्यादातर ने, पढ़ी ही नहीं, बस 28 सितम्बर और 23 मार्च को, भगतसिंह की मूर्ति पर फूल माला चढ़ाकर और नारे लगाकर ही फ़र्ज़ पूरा हुआ मान लिया। यदि पढ़ा, तो बस अपने तक सीमित रखा, करोड़ों बेहाल-परेशान मेहनतक़शों को पढ़ाने की ज़हमत नहीं उठाई। 'हम दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र हैं', 'हमारे देश में मज़हबी ज़हालत नहीं फैलाई जा सकती', 'हमारी धर्मनिरपेक्षता की जड़ें बहुत गहरी हैं'; इसी अकड़ में रहे। ये सब ख़ुशफ़हमियां कितनी झूठी निकलीं. ये दावे कितने खोखले निकले। मोदी सरकार का चरित्र, ईरान, सऊदी अरब, पाकिस्तान से अलग कहा जा सकता है क्या?

धर्मनिरपेक्षता का दिखावा करने वाले अधिकांश कट्टर हिन्दुत्ववादी ज़ाहिल निकले। दूसरी ओर, हिन्दुत्ववादी फ़ासिस्ट ब्रिगेड, चुपचाप अपने काम में लगी रही। भले उन्हें सुबह पार्कों में उछल-कूद करते देख, लोग उनपर 75 से भी अधिक वक़्त तक हँसे, मखौल बनाया लेकिन वे बिना विचलित हुए, माशरे में मज़हबी ज़हर चढ़ाते रह। दूसरी ओर, भगतसिंह के 'वारिस' झूठा मुगालता पाले रहे। आँख तब खुली जब चमन लुट गया। वैसे भी, सारी क्रांतिकारी पार्टियों के पास जितने 'पेशेवर क्रांतिकारी' हैं, उनसे कहीं ज्यादा 'पेशेवर प्रचारक' संघ के पास हैं। आज देश के हर अहम ओहदे पर हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथी क़ाबिज़ हैं। भगतसिंह की विरासत को हम संभाल नहीं पाए। हम इस जवाबदेही से बच नहीं सकते। इसका, लेकिन, एक सकारात्मक पहलू भी ह। पाश के शब्दों में, कणक में कंगियारी कितनी थी, पता चल गया. 'कणक' ही भगतसिंह की असल वारिश है. उनके विचारों का गंभीर अध्ययन करते हुए उन्हें हर मेहनतक़श तक ले जाकर, उन्हें समाजवादी क्रांति के लिए गोलबंद करना ही, आज शहीद-ए-आज़म को याद करना, उनका असली वारिस होना है। शहीद-ए-आज़म, पन्ने को जहाँ मोड़ गए थे, हमें वहीं से आगे पढ़ना और पढ़ाना है। फ़ासीवाद को निर्णायक शिकस्त देने की चुनौती हमें स्वीकार करनी ही होगी।